Sumangalam Prabha
A peer reviewed (Refereed) & open access journal
RNI N0.- UPHIN/2009/31180
PP.No.: 25-27

ISSN: 2250-1894
Vol.-15, No.-IV, Issus-60
Year: Jan-Mar 2025

वैदिक युग में संगीत का स्थान

आभा श्री[1], प्रो0 संध्या रानी शाक्य[2]

1. शोध अध्येत्री, संगीत विभाग 2. प्राचार्या, रानी अवंतीबाई लोधी महिला महाविद्यालय, बरेली (उ0प्र0)

भारतीय संस्कृति के इतिहास में वेदों का स्थान नितान्त महत्वपूर्ण है। वेद ज्ञान के मानसरोवर है। जहाँ से ज्ञान की विमल धारायें विभिन्न मार्गों से बहकर भारत को ही नहीं अपितु संपूर्ण जगत को उर्वरता प्रदान करती है। वेद संपूर्ण वाङमय का बोधक शब्द है, और इसी रूप में उसका प्रयोग होता आया है। वेद ज्ञान के सागर है जिनसे समस्त विद्याओं, शास्त्रों और कलाओं की उन्नत धारायें बहीं। वेदों में आत्मतत्व का सूक्ष्म निरूपण किया गया है।[1]

वेद शब्द की व्युत्पत्ति ज्ञानार्थक विद् धातु से हुई है। वेद का अर्थ ही है, ज्ञान। ज्ञान एक व्यापक अर्थ का वाचक शब्द है। वेद शब्द से वह वह ज्ञान अभिप्रेरित है जिसका सर्वप्रथम ऋषि महर्षियों ने साक्षात्कार किया। ऋषियों ने तपोबल से वेदों का दर्शन किया। इसलिये भास्कराचार्य के निरूक्त 1/10 में ऋषियों को मंत्रदृष्टा कहा गया है।

यह वेद ज्ञान ऋचाओ अर्थात् मंत्रों द्वारा अभिव्यक्त हुआ है। वेद ऐसा दीप्तिपुंज है जो अपनी दिव्य आभा से स्वयं भासित होता है और जिसके द्वारा समस्त भारतीय वाङमय प्रकाशित है। वैदिक शब्द वेद विषयक बहुविध ज्ञान सामग्री का द्योतक है। यह वेद विषयक सामग्री है, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, और वेदांग। यह वेदों से भिन्न होते हुये भी सामग्री वेदों पर ही आधारित है। ये वैदिक साहित्य के अन्तर्गत ही माने जाते है।

वेदों का नाम श्रुति है अर्थात् जो श्रव्य माध्यमों के द्वारा अथवा परम्परा से श्रवण के द्वारा कंठस्थ रूप में निर्वाहित होते चले आये। यह परम्परा अनेक ऋषि आश्रमों के शिष्य–प्रशिष्यों द्वारा सुरक्षित रही। इनके प्रचारित रहने में अनेक ऋषियों व महर्षियों का योगदान रहा है।

ऋग्वेद में प्राचीन तथा नवीन ऋषियों को मंत्रों का कर्ता बताया गया है। उनके कर्ता होने का स्पष्ट उल्लेख भी मिलता है[2] इदं ब्रह्म क्रियमाणं नवीयः (ऋ0 7/35/14), ब्रह्म कृण्वन्तो हरिवो वशिष्ठ (ऋ० 7/37/4), ब्रहोन्द्राय वज्रिणे अकारि (ऋ0 7/97/9) आदि मंत्रों में उल्लेख मिलता है।''2 भाषा शाखा की दृ ष्टि से मण्डित तथा आध्यात्मिक भावना में अविश्वासी कुछ विद्वानों की दृष्टि में ऋषि लोग ही वैदिक मंत्रों के कर्ता है। परन्तु वेद मर्मज्ञ प्राचीन शास्त्रों तथा शास्त्रज्ञों ने एक स्वर से ऋषियों को वैदिक मंत्रों का दृष्टा ही माना है कर्ता नहीं।

मंत्रसंहिता से केवल वेद का तात्पर्य नहीं है वरन् इसके अन्तर्गत ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् वाङमय का भी समावेश है। वैदिक युग के इस विशाल कालखण्ड में तत्कालीन संगीत साधना के अनेक उल्लेख पाये जाते है। वैदिक युग भारत के सांस्कृतिक इतिहास में प्राचीनतम युग माना जाता है।'' वैदिक युग में प्रचलित संगीत का अध्ययन सुविधा के लिये निम्न तीन खण्डों में पृथक्तया किया जा सकता हैः–1) ऋक्, यजु तथा अथर्व में संगीत, 2) सामवेद में संगीत, 3) उपनिषद तथा शिक्षा ग्रंथो में संगीत।

वेदचतुष्टयी में सामवेद का संगीत में विशिष्ट स्थान है। सामन् या साम का अर्थ होता है गीतियुक्त मंत्र। गीतियुक्त होना, साम के आवश्यक लक्षण है। ''ऋग्वेद के मंत्र (ऋक् या ऋचा) जब विशिष्ट गान पद्धति के द्वारा गाये जाते है तब उनको सामन् या साम कहते हैं।''[3] अतः गोति या गान को पूर्वमीमांसा में साम कहा गया है– गीतिशुसामाख्या (पूर्व० 2,1,36)। ऋग्वेद में स्तोत्ररूप या गीति रूप मंत्र को आगूष्यं साम (ऋग्० 1, 62, 2) कहा है।''[4] आंगूष्य 'का अर्थ है स्तोत्र या गीतिरूप। अतः स्पष्ट होता है कि जब मंत्र या ऋचा गीति के रूप में प्रस्तुत की जाती है तो उसे साम कहते है। साम शब्द का मूलार्थ गान अर्थात् गेय वस्तु रहा है। तथापि अधिष्ठान के रूप में ऋचाओं से सम्बद्ध होने के कारण उनके लिये भी साम शब्द का प्रयोग किया गया है। ऋग्वेद और सामवेद का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। सामवेद, उपासना का वेद है, इसमें आध्यात्मिक मंत्रों का मुख्य रूप से संकलन है। सामवेद से प्राणशक्ति की वृद्धि होती है। सामवेद संगीत एवं भक्ति के द्वारा परमात्मा प्राप्ति का साधन है। साम का वास्तविक स्वारस्य उसके स्वर में निहित है। साम का प्रधान अंग स्वर ही है, का साम्नो गतिरिति स्वर इति होवाचः। साम की गति स्वर लहरियों से निर्दिष्ट हुआ करती है। स्वर ही साम का सर्वरूप है।''[5]

साम का यौगिक अर्थ मान या गीति है, परन्तु स्वराधिष्ठान के रूप में ऋचाओं से सम्बद्ध होने के कारण साम का अर्थ गेय ऋचायें भी कहा जाता है।

अनुरूपी लेखक/ संयुक्त लेखक

सामवेद के भाग–सामवेद के दो प्रधान भाग हैंः–आर्चिक तथा गान। आर्चिक भाग केवल ऋग्वेद की ऋचाओं का संग्रह मात्र है। आर्चिक के दो भाग है–पूर्वाचिक एवं उत्तरार्चिक। आर्थिक का शाब्दिक अर्थ है, ऋचाओं का समूह या संकलन। पूर्वाचिक में छः अध्याय है। इसमें चार काण्ड है–क) अग्नेय, ख) ऐन्द्र, ग) पावमान, घ) आरण्य गान। पूर्वार्चिक के प्रथम पाँच अग्नि, इन्द्र, पवमान आदि देवताओं की स्तुति परक है। पूर्वार्चिंक का द्वितीय से चतुर्थ अध्याय, इन्द्र विषयक मंत्रों का संकलन है। प्रथम से लेकर पंचमाध्याय तक की ऋचायें ग्राम गान के रूप में अभिहित है। केवल छठा अध्याय आरण्य गान के अन्तर्गत है।

अरार्चिक नामक द्वितीय भाग में नौ अध्याय है। संपूर्ण मंत्रों की संख्या 1225 है। पूर्वाचिंक तथा उत्तरार्चिक की रचना में कुछ विभिन्नता है। पूर्वार्चिक में सामों की मूलभूत ऋचायें पठित है तथा उत्तरार्चिक में इन ऋचाओं को धुन पर गाये जाने वाले लयों का संग्रह है। उत्तरार्चिक में जो तीन–चार ऋचाओं के सम्मिलित सूक्त संग्रहित है उनमें प्रायः प्रथम ऋचायें पूर्वार्थिक में प्राप्त होती है। दोनों का सम्बन्ध गान की दृष्टि से यह है कि उत्तरार्चिक के प्रगाधों के लिये वही स्वरावलि अर्थात् साम नियतः है जो कि पूर्वार्चिक में उपलब्ध उसकी प्रथम ऋचा पर किया जाता है। साम गान के अन्तर्गत गाये जाने वाले स्तोत्रों का निर्माण इन्हीं उत्तरार्चिक की ऋचाओं से होता रहा है। स्तोत्र का निर्माण एक से लेकर बारह तक सूक्तों से किया जाता है तथा इनका गान एक ही स्वरावलि में किया जाता है जो पूर्वार्चिक के अन्तर्गत उसकी प्रथम ऋक् के लिये नियत हो।''[6]

आर्चिक एवं गान ग्रन्थ–आर्चिक ग्रन्थों में ऋचाओं का समूह है। यह ऋचायें गान का आधार है। इनमें महत्वपूर्ण परिवर्तन करके जिन ग्रन्थों में इनका ग्रन्थ रूप दिया है वे गान ग्रन्थ है। ये ही वास्तविक साम है। पूर्वार्चिक की ऋचाओं पर आधारित जो साम बने उन्हें ग्रामगेय साम कहा गया। आरण्यक संहिता की ऋचाओं के आधार पर जो साम बने उन्हें अरण्यगेय साम कहा गया। उत्तरार्चिक की ऋचाओं के आधार पर जो साम बने उन्हें ऊहगान कहते हैं।

ग्रामगेय गान का बस्तियों में गाया जाता था। अरण्यगेय गान का ग्राम से पृथक वन में अभ्यास करते थे। इन्हें रहस्यगान भी कहा जाता था। इस प्रकार के गान में दैविय शक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करने का रहस्य होता था। इनका अभ्यास वन के निर्जन स्थानों में किया जाता था। ऊह गान एवं ऊह्यगान में अन्तर यही था कि ऊहगान, ग्रामगेय गान पर आधारित थे और ऊद्यगान, रहस्यगान पर आधारित थे।

सामगीत के भाग–साम गान का महत्व यज्ञ यागों में सर्वोपरि रहा है। सामगीतों के पाँच भाग है। ये पाँच भाग भक्तियाँ कहलाते है। यहाँ भक्ति से तात्पर्य भाग से है। ये पाँच भाग निम्नवत् है। प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव व निधन। उपरोक्त पाँच भाग सर्वसम्मत है।'' किन्तु साम गायकों की अन्य परम्परा दो भागों को मानती है और ये है, हिंकार तथा आदि। हिंकार का प्रयोग साम के आरम्भ में तथा आदि का प्रयोग प्रस्ताव एवं उदगीथ के मध्य में किया जाता है। मंत्रब्राह्मण में साम की पंचविध, इन दोंनों परम्पराओं का वर्णन प्राप्त होता है।''[7] साम के गायक तीन होते है। प्रस्तोता, उगाता तथा प्रतिहर्ता। मुख्य गायक उद्गाता होता है। प्रस्तोता और प्रतिहर्ता मुख्य गायक के सहायक होते है।''[8]

प्रस्ताव–यह साम का आरम्भिक भाग है। जिसे प्रस्तोता ऋत्विज गाता है। ये भाग हूँ से आरम्भ होता है। जो कि हिंकार का स्वरूप है। हिंकार का गान साम के आरम्भ में सभी ऋत्विज एक साथ किया करते हैं। उसके बाद प्रस्तोता सामगीत के प्रस्ताव भाग को ओंकार के साथ गाया जाता है। मंत्र या गीत के आरम्भिक भाग को प्रस्ताव कहते हैं।

उद्गीथ उद्गीथ गीत का मुख्य और अधिकांश भाग होता है। उद्गीथ भाग को उच्च स्वरों में गाया जाता है।

प्रतिहर्ता–इसके पश्चात् प्रतिहर्ता उद्गीथ के अन्तिम पद से गान को पकड़ लेता है और प्रतिहार भाग को लेकर चलता है। प्रतिहर्ता का अर्थ ही होता है, आकर मिल जाने वाला या दो विभागों को जोड़ने वाला।

उपद्रव–''प्रतिहार के दो भागों में यह अन्यतम है, जिसका गान उद्गाता अर्थात् मुख्य साम गायक करता है। मुख्य प्रतिहार का गान प्रतिहर्ता के द्वारा किये जाने पर उसी का खण्डशः गान मुख्य उद्गाता पुनः करता है। इस खण्ड को उपद्रव कहा जाता है।''[9]

निधन–प्रतिहार का शेष अंश ओम् को जोड़कर विभिन्न विभाग के रूप में गाया जाता है, इस भाग को निधन कहते है। इस खण्ड को प्रस्तोता, उगाता तथा प्रतिहर्ता तीनों ही ऋत्विज साथ मिलकर गाते है।

साम के स्वर–साम में ऋग्वेद के समान तीन स्वरों का प्रयोग किया जाता रहा है ये है उद्गाता, अनुद्गाता त्स्वरित। साम संगीत के विकास के साथ सप्त स्वरों का प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, मंद्र, क्रुष्ट एवं अतिस्वार।

''स्वामी प्रज्ञानन्द ने कहा है कि सामवेदीय स्वर के विकास के दो सोपान थे। प्रथम सोपान में केवल तीन या चार स्वरों का प्रयोग होता था। द्वितीय सोपान में अन्य तीन स्वरों को सम्मिलित किया गया। इस प्रकार सात स्वरों से युक्त सामवेदीय संगीत का विकास हुआ।''[10]

समविकार–ऋग्वेद के मंत्रों का यथावत् प्रयोग सामगान के लिये नहीं करते। ऋग्वेद के मंत्रों में परिवर्तन करके उनका गान करते है। किसी भी ऋचा को गान का रूप देने के लिये कुछ परिवर्तन किये जाते हैं। इन्हें सामवेद की पारिभाषिक शब्दावली में विकार कहा जाता है। साम गान के छः विकार होते हैः–1) विकार, 2) विश्लेषण, 3) विकर्षण, 4) अभ्यास, 5) विराम, और 6) स्तोभ ।

1) विकार–मंत्र के शब्दों में गान की दृष्टि से कुछ परिवर्तन किया जाता है। जैसे–अग्ने को ओग्नाथि कहना।
2) विश्लेषण–एक पद को दो या अधिक खण्डों में विभक्त करना। जैसे बीतये को वोयि तोयाशयि बोलना।
3) विकर्षण–एक स्वर को दीर्घ से अधिक समयावधि तक उच्चारित करना। जैसे–ये का या 23 यि करके गाना।
4) अभ्यास–किसी पद का दो या अधिक बार उच्चारण करना। जैसे तो या 2 ची, तो या 2 ची का दो बार उच्चारण करना।
5) विराम–विश्रान्ति देकर तथा रूक–रूक कर गाना यथा गूणानों हव्यदातये पद को गृणानोह, इतना गाकर कुछ विराम देकर व्यदातये का गान करना।
6) स्तोम–ऋचा का गान का रूप देने के लिये कुछ अतिरिक्त पद मंत्र के साथ जोड़ दिये जाते है। ये पद आलाप के लिये होते है। जैसे औहोवा, हाउ, हाउ, आदि।

साम संगीत की गान प्रणाली–साम गान का आधारभूत तत्व स्वर है। साम गान में आद्योपान्त स्वर का महत्व होता है। साम का आरम्भ ओम् से किया जाता है। साम गान का अवसान भी ओम् स्वर के साथ ही किया जाता है। इस के साथ उपगायक निरन्तर ओम् स्वर से संगति करते रहते है। इसके करने से मुख्य गायकों को अभीष्ट स्वर की स्मृति बनी रहती है। इस स्वर का गायन मंद्र स्वर के साथ किया जाता है। निरन्तर ओम् के अभ्यास से विभिन्न विभागों का विच्छेद नगण्य प्रतीत होता है और गाता के लिये अपने स्वर की प्रतीति अत्यन्त ही सहज हो जाती है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सामवेद संगीत प्रधान है। सामन् का अर्थ है सस्वर मंत्र आदि का पाठ। सामवेद का अर्थ होता है, सस्वर पाठ योग्यमंत्रों का संकलन। स्वर ही सामवेद का स्वत्प है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य और संस्कृति– संवर्तिका प्रकाशन, इलाहाबाद, सन् 1969 पृ०–97.
2. वाचस्पति गैरोला, साहित्य और संस्कृति– शारदा संस्थान, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी सन् 1993 पृ०–10.
3. वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य एवं संस्कृति– विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2008 पृ०–77.
4. वही पृ० 77.
5. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संगीत का इतिहास– चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1994 पृ०–55.
6. यही–पृ० 58.
7. वही–पृ0 74.
8. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संगीत का इतिहास– संगीत रिसर्च एकेडमी, कलका, सन् 1994 पृ०–63.
9. वाचस्पति गैरोला, भारतीय संगीत का इतिहास– चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1994 पृ०–76.
10. वाचस्पति गैरोला, वैदिक साहित्य एवं संस्कृतिविश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, सन् 2008, पृ०– 94.

*****